UGC NET PAPER-I

GENERAL & TEACHING APTITUDE

SAMPLE THEORY

- शिक्षण की प्रकृति
- शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक
- शिक्षण विधियाँ
- शिक्षण सहायक सामग्री

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams
1-C-8, Sheela Chowdhary Road, Talwandi, Kota (Raj.) Tel No. 0744-2429714
Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

शिक्षण की प्रकृति

1. **वर्ल्ड बुक एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार,** ''शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ज्ञान, कौशल तथा अभिरुचियों को सीखने या प्राप्त करने में सहायता करता है।''

2. **मैरीसन के अनुसार,** " शिक्षण एक परिपक्व तथा एक कम परिपक्व व्यक्ति के मध्य आत्मीय सम्बन्ध है जहाँ कम परिपक्व को शिक्षा की और अग्रसित किया जाता है।''

शिक्षण के उद्देश्य

सभी कार्यो के लिए हमें कोई न कोई उद्देश्य सामने रखना पड़ता है। अतएव शिक्षण में भी उचित उद्देश्य को अपनाया जाना अत्यावश्यक है। शिक्षा के उद्देश्य के बिना इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य निम्नवत् हैं–

(i) जीविकोपार्जन उद्देश्य
(ii) बौद्धिक विकास का उद्देश्य
(iii) शारीरिक विकास का उद्देश्य
(iv) चरित्र निर्माण का उद्देश्य
(v) सामाजिकता का उद्देश्य
(vi) आत्म बोध का उद्देश्य
(vii) सांस्कृतिक उद्देश्य
(viii) जीवन को सम्पूर्णता प्रदान करने का उद्देश्य
(ix) परिस्थिति से अनुकूलन का उद्देश्य
(x) ईश्वर प्राप्ति का उद्देश्य, आदि

शिक्षण की विशेषताएँ

1. अपेक्षित सूचनाओं का आदान–प्रदान
2. प्रभावी नियोजन
3. छात्र क्रियाशील शिक्षण
4. प्रजातांत्रिक आदर्शों के अनुकूल
5. सहानुभूति एवं दया पर आधारित
6. निर्देशात्मकता (Directional)
7. छात्र–शिक्षक सहयोग
8. छात्रों के पूर्व ज्ञान का उपयोग
9. प्रगतिशील शिक्षण
10. उत्तम शिक्षण विधियों पर आधारित
11. उपचारात्मक
12. निदानात्मक

VPM CLASSES

13. संवेगात्मक स्थिरता की उपस्थिति
14. छात्र योग्यताओं का संवर्द्धन
15. शिक्षक की उपस्थिति–दार्शनिक एव मित्र के रुप में
16. प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष कक्षा व्यवहार
17. छात्र–शिक्षक में माधुर्यपूर्ण सम्बन्ध

शिक्षण की आधारभूत आवश्यकताएँ

शिक्षण एक क्रिया है जिसमें शिक्षक और छात्र मिलकर एक उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। अतः शिक्षण की आधारभूत आवश्यकता अधिगम है। जब तक अधिगम नहीं होगा शिक्षण प्रक्रिया अपूर्ण ही बनी रहेगी। इसलिए इन दोनों प्रत्ययों को बहुधा साथ–साथ प्रयोग किया जाता है।

स्मिथ के अनुसार, ''शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगम की उत्पत्ति होती है।''

शिक्षक– शिक्षक एक ऐसा स्त्रोत है, जिससे विद्यार्थी अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है। शिक्षक, शैक्षिक प्रक्रिया का एक आधारभूत तत्त्व हे जिसके अभाव में शिक्षा प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती।

छात्र–शिक्षण–प्रक्रिया छात्र के बिना संभव ही नहीं है। छात्र की वह तत्त्व है जिसे शिक्षा प्राप्त करनी है।

पाठ्यक्रम– शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रमुख तत्त्व पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम ही वह साधन है जिससे शिक्षक छात्र को शिक्षा देता है तथा शिक्षण प्रक्रिया चलती है शिक्षार्थी को क्या सिखाना है, यह निर्धारण ही पाठ्यक्रम है।

बर्टन (Butron) ने शिक्षण–अधिगम के मध्य सम्बन्ध निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा बताया है–

1. शिक्षा की प्रमुख क्रियाएँ शिक्षण एवं अधिगम है, अतः इन दोनों को समन्वित करके शिक्षा को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
2. शिक्षण सोद्देश्य प्रक्रिया है। अतः उद्देश्यों को व्यावहारिक रुप में निर्धारित करके शिक्षण की ऐसी क्रियाओं की व्यवस्था की जा सकती है। जो अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन में सफल हो सके।
3. शिक्षक सिद्धान्तों का प्रतिपादन अधिगम सिद्धान्तों की सहायता से किया जा सकता है।
4. शिक्षण में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों एवं शक्तियों का प्रयोग शक्तिशाली ढंग से किया जा सकता है।
6. शिक्षण में दृश्य–श्रब्य सामग्री का उपयोग उद्देश्यों की प्राप्ति के संदर्भ में किया जा सकता है।

अध्येता की विशेषताएँ –

एक अध्येता के गुणों एवं विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जाएगा –

1. **वंशानुक्रम एवं वातावरण –**

वंशानुक्रम : प्रयः ऐसा माना जाता है जैसे माता–पिता होंगे वैसे ही उनके बच्चे होंगे। इससे अभिप्राय यह है कि प्रत्येक बालक अपने माता–पिता से बुनियादी गुण प्राप्त करते है। इसी को ही वंशानुक्रम कहते है। **डगलस एवं हॉलैण्ड** के शब्दों में, ''एक व्यक्ति के वंशानुक्रम में वे सभी शारीरिक बनावटें, शारीरिक विशेषताएँ, क्रियाएँ या क्षमताएँ निहित होती है जिन्हें वह अपने माता–पिता, पूर्वजों अथवा प्रजाति से प्राप्त करता है।''

वातावरण : हमारे चारों ओर का जो वायुमण्डल है अथवा परिवेश है, वही हमारा वातावरण है। अतः वातावरण में उन सभी बाहरी तत्वों को सम्मिलित किया जाता है, जो बालक के जीवन को प्रभावित करते है।

2. **मूलप्रवृत्तियाँ –**

विलियम मैक्डूगल ने सर्वप्रथम अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइकोलॉजी'' (1908) में मूलप्रवृत्तियों का वर्णन किया था।

मूलप्रवृत्तियों की विशेषताएँ –

(i) जन्मजात होती है।
(ii) प्रयोजनात्मक होती है।
(iii) समस्त जीवों में उपस्थित रहती है।
(iv) संवेग से सम्बन्धित है।
(v) आदतों में विभिन्नता प्रकट करती है।
(vi) मूलप्रवृत्तियों द्वारा प्रदत्त लाभप्रद होती है।
(vii) संशोधित होती रहती है।

मूलप्रवृत्तियों का शैक्षिक महत्व –

(i) प्रेरणा प्रदान करना
(ii) रूचि की पहचान करना
(iii) ज्ञान प्राप्ति में सहायक
(iv) रचनात्मक कार्यो में सहायक
(v) व्यवहार परिवर्तन में सहायक
(vi) चरित्र–निर्माण में सहायक
(vii) अनुशासन में सहायक
(viii) पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक

3. संवेग एवं स्थायीभाव –

संवेग = Emotion $\xrightarrow[\text{शब्द}]{\text{लैटिन}}$ Emovere = उत्तेजित दशा का द्योतक

संवेग : सुख, दुःख, प्रेम, भय, आशा, निराशा, लज्जा, गर्व, ईर्ष्या, आश्चर्य और सहानुभूति प्रमुख मानवीय संवेग है।

(i) व्यवहार को संगठित करता है।
(ii) व्यवहार को शक्ति प्रदान करता है।
(iii) व्यवहार को दिशा निर्देशित करता है।
(iv) व्यवहार को लक्ष्य भेदी बनता है।
(v) व्यवहार को लक्ष्योनुरूप उत्तेजित करता है।

स्थायीभाव : स्थायीभाव व्यक्ति वस्तु, विचार, आदर्श स्थान के प्रति संवेगों का अर्जित एवं स्थायी स्वरूप है। स्थायीभाव संवेगों का वह सार रूप है जो स्थायी स्थिति ग्रहण कर लेता है।

स्थायीभाव की विशेषताएँ –

(i) अर्जित किये जाते है।
(ii) मानसिक रचनाएँ है।
(iii) मूर्त/अमूर्त दोनों तरह के होते है।
(iv) व्यक्तित्व के आधारभूत तत्व है।

स्थायीभाव द्वारा बालकों में आदर्श परक मूल्यों का निर्माण किया जा सकता है, व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण किया जा सकता है।

4. खेल एवं खेल प्रणाली –

खेल बालकों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। खेल एक स्वयं की खुशी के किये की जाने वाली प्रक्रिया है, जिसका कोई उद्देश्य नहीं होता है। वास्तव में खेल (बालकों के) के एक निरूद्देश्य प्रक्रिया है।

खेल की विशेषताएँ –

(i) खेल जन्मजात प्रवृत्ति है।
(i) खेल स्वाभाविक प्रवृत्ति है।
(iii) खेल स्वतंत्र एवं आत्मप्रेरित है।
(iv) खेल स्फूर्ति एवं आनन्ददायक है।
(v) खेल रचनात्मक क्रिया हो सकती है।
(vi) खेल उद्देश्य रहित क्रिया है।

5. **बाल अभिवृद्धि एवं विकास –**

अध्येता के गुणों एवं विशेषताओं की विस्तृत जानकारी के लिए बालक के अभिवृद्धि एवं विकास का ज्ञान होना परमावश्यक है। जब तक बालक के विकास यात्रा को ठीक से नही समझा जाएगा तब तक उनके अधिगम सम्बन्धी गुणों एवं आवश्यकताओं को समझ पाने में असमर्थता रहेगी।

शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

यदि शिक्षण प्रभावशाली नहीं होगा तो विद्यार्थी कुछ सीख नहीं पाएंगे और अन्तः अधिगम (Learning) की अधिकता हेतु शिक्षण का प्रभावी होना भी आवश्यक है, जो कारक शिक्षण को प्रभावित करते हैं, उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(A) स्वीय कारक (B) बौद्धिक कारक

(C) मनोवैज्ञानिक कारक

(A) स्वीय कारक

स्वीय कारकों के अन्तर्गत वे सभी स्थितियां आती हैं जो प्रत्यक्ष रुप से शिक्षक से सीधी तरह सम्बद्ध हैं। ये स्थितियां निम्न प्रकार की हो सकती हैं:

1. पारिवारिक परिस्थितियां। 2. विद्यालीय परिस्थितियां।

ये शिक्षक के मन को अनुकूल या प्रतिकूल रुप से प्रभावित करती हैं। जो बातें शिक्षक के मन को अनुकूल रुप से प्रभावित करती हैं, वे उसके शिक्षण को अप्रभावी बनाती है।

मान लीजिए, शिक्षक के घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है तो उसे हर समय घरेलू सामान जुटाने की चिन्ता रहेगी और उसका मन पढ़ाने में नहीं लगेगा। इस प्रकार, जिस शिक्षक की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है, उसकी भी अपने व्यवसाय अर्थात् शिक्षण के प्रति निष्ठा प्रायः कम होगी। उसे इस बात का भय नही कि यदि नौकरी छूट जाए या कुछ समय के लिए किसी कारण से घर बैठना पड़े तो उसके घरेलू खर्चे किस प्रकार चलेंगे? इस दृष्टि से सामान्य स्थिति ठीक रहती है, जिसमें न तो घर की चिन्ता रहे और न ही अति संरक्षण के कारण पनपने वाली लापरवाही।

पारिवारिक परिस्थितियों के अन्तर्गत अनेक कारण है जिनसे –

1. शिक्षक को तैयारी के लिए घर पर न तो अतिरिक्त समय ही मिलता है और 2. न ही वह शिक्षार्थियों को पढ़ाने में मानसिक दृष्टि से सक्रिय हो पाता है।

विद्यालयी परिस्थितियों के अन्तर्गत भी शिक्षकों के अपने अन्य साथियों, शाला प्रधान, प्रशासक, आदि के साथ सम्बन्ध यदि ठीक है तो वे शिक्षण को अनुकूल रूप से प्रभावित करते हैं, किन्तु यदि ठीक नहीं है तो वे उसके शिक्षण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है।

बौद्धिक कारक –

बुद्धि एक ऐसा अमूर्त तत्व है जो किसी रचनात्मक कौशल के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षण सर्वाधिक प्रभावी तब होता है जब शिक्षक, स्वयं को कक्षा की परिस्थितियों के अनुरूप बदल सके और यह कार्य उस समय तक सम्भव नहीं जब तक शिक्षक प्रखर बुद्धि न हो।

अतः शिक्षक बौद्धिक दृष्टि से जितना अधिक प्रखर होगा, उसका शिक्षण सामान्यतया उतना ही अधिक प्रभावकारी होगा। यदि शिक्षक प्रखर बुद्धि है तो :

1. शिक्षार्थियों की शैक्षिक समस्याओं का समाधान उसी समय कर सकेगा।
2. प्रतिभाशाली शिक्षार्थियों की उत्कण्ठाओं का उत्तर दे सकेगा।
3. बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को बदल सकेगा।
4. यह निर्णय ले सकेगा कि कहाँ कौन–सी विधि और कौन–सी शिक्षण सामग्री सर्वाधिक उपयुक्त रहेगी।
5. किसी पाठ की गहराई में वही शिक्षक जा सकेगा जो बौद्धिक दृष्टि से प्रखर हो।

मनोवैज्ञानिक कारक –

मनोवैज्ञानिक कारकों के अन्तर्गत अभिक्षमता, रूचि, अभिवृत्ति, मूल प्रवृत्तियां, सहज प्रवृत्तियां, भावना ग्रन्थियां कारक आते है।

अभिक्षमता शिक्षक की वह अन्तर्निहित शक्ति है जो उसे किसी कार्य के प्रति उन्मुख करती है। यदि कोई शिक्षक किसी भौतिक प्रलोभन के कारण किसी व्यवसाय या कार्य को पसन्द करता है तो वह उसकी अभिक्षमता न कहलाकर अभिवृत्ति कहलाएगी। शिक्षक का झुकाव मन से अध्यापन की ओर नहीं होगा, वह अच्छा शिक्षक बन सके – यह कम ही सम्भव है। दूसरी ओर जिस शिक्षक का झुकाव मन से अध्यापन की ओर है, वह यदि अच्छा शिक्षक नहीं है तो प्रयास करने पर अच्छा शिक्षक बन सकता है।

रूचि एक ऐसा तत्व है जो किसी भी बात को सीखने और किसी भी काम को करने की पूर्व आवश्यकता है।

अभिवृत्ति रूचि का ही प्रगाढ़ रूप है। जिस कार्य में हमारी रूचि होती है, उसमें रूचि लेते–लेते वह हमारी अभिवृत्ति बन जाती है। धनात्मक अभिवृत्ति शिक्षण में सहायक और ऋणात्मक अभिवृत्ति शिक्षण में बाधक सिद्ध होती है।

मूल प्रवृत्तियां एवं **संवेग** हमने संवेगों के भी दो रूप देखे थे – **जिज्ञासा, साहस,** आदि **धनात्मक** तथा **घृणा, भय** आदि **ऋणात्मक**। धनात्मक संवेगों की, कार्य करने वाले के मन में रचनात्मक। और ऋणात्मक संवेगों की प्रतिक्रिया ध्वंसात्मक होती है। उदाहरण के लिए – जो शिक्षक क्रोधी है, उससे विद्यार्थी भय खाएंगे अपनी समस्याओं को पूछ नहीं पाएंगे परिणामतः अधिगम कम होगा। उधर क्रोधी शिक्षक का सन्तुलन भी बिगड़ा रहेगा पढ़ाने में मन नहीं लगेगा। परिणामतः शिक्षण प्रभावी नहीं बन पाएगा। अतः शिक्षक का क्रोधी होना उसके अध्यापन को ऋणात्मक रूप से प्रभावित करता है।

भावना ग्रन्थियां भी शिक्षण को शिक्षण को प्रतिकूल रूप में ही प्रभावित करती है। जब कोई अच्छा शिक्षक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझने लगता है तो उसमें अहं जाग्रत हो जाता है। अहं के पनपने पर उसका अध्ययन टूट जाता है। अध्ययन टूटने पर अध्यापन में धीरे–धीरे वह कुशलता कम होने लगती है जो उसने पहले अर्जित की थी। यही हाल हीनभावना का है। जब कोई शिक्षक स्वयं को अन्य शिक्षकों की तुलना में हीन समझने लगता है तो उसकी अध्यापन कुशलता में धीरे–धीरे कमी आने लगती है। इस प्रकार दोनों ही प्रकार की भावना ग्रन्थियां, शिक्षण को ऋणात्मक रूप से प्रभावित करती है।

शिक्षण विधियाँः–

शिक्षण की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं–

(1) **आगमन विधिः–** इस विधि में शिक्षण सूत्र 'विशिष्ट से सामान्य की ओर' या 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' प्रयोग किए जाते हैं। इस विधि में शिक्षार्थी के सम्मुख विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं तथा फिर उन्हीं के माध्यम से विषय–वस्तु तथा सिद्धांत का प्रतिपादन किया जाता है। यह विधि मनोवैज्ञानिक है तथा छोटे बच्चों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(2) **निगमन विधिः–** यह विधि आगमन विधि की विपरीत है। इसमें शिक्षार्थी के सम्मुख पहले सिद्वांतों को प्रस्तुत किया जाता है तथा उसके पश्चात् विभिन्न उदाहरणों द्वारा इन सिद्धांतों को निरूपित किया जाता है। यह विधि उच्च कक्षाओं के बड़े विद्यार्थीयों के लिए उपयोगी है।

(3) अन्वेषण अथवा खोज विधिः– इस विधि में शिक्षण सूत्र 'विश्लेषण से संश्लेषण की ओर' प्रयोग किए जाते हैं। इस विधि में विद्यार्थी प्रत्येक तथ्य की खोज स्वयं प्रयोग करके करते हैं। स्वयं तथ्यों से सम्बंधित जानकारी जुटाना, प्रयोगों की दिशा निर्धारित करना तथा फिर प्रयोग द्वारा परिणाम पर्याप्त करना इस विधि की विशेषता है।

(4) निरीक्षण विधिः– इस विधि में शिक्षक स्वयं न बताकर बालकों को स्वयं निरीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस विधि में ज्ञान प्राप्ति के साथ–साथ विद्यार्थीयों में स्वतंत्र रूप से देखने, सोचने तथा अपने विचार प्रकट करने की क्षमता का विकास होता है।

(5) बोध प्रणालीः– बोध प्रणाली का पठन शिक्षण में अत्यधिक महत्व है। प्रारंभिक स्तर पर बोध प्रणाली का अर्थ हैं, शिक्षा रूपी पठन क्रिया में लगे और समान पठन की दृष्टि से पठन–क्रिया के वस्तु, बोध, प्रतिफल ज्ञान और कौशल में हो सके। किसी भी पाठ के केन्द्रीय भाव को ग्रहण करना बोध से सम्बंधित है।

(6) सामूहिक पाठन विधिः– इस प्रणाली में अध्यापक सर्वप्रथम सम्पूर्ण कक्षा के सामने छोटे–छोटे पद्य या बाल गीतों का आदर्श पाठन करते हैं तथा समस्त कक्षा सामुहिक रूप से अनुकरण करती रहती है। समूह–शिक्षण विधि की परिकल्पना विद्यार्थियों के समूह के सीखने के लिए एक सार्थक प्रयत्न है।

(7) यांत्रिक प्रणालीः– इस प्रणाली के अन्तर्गत 'कम्प्यूटर शिक्षा' विद्यालयों का एक आवश्यक अंग बनती जा रही है। 'कम्प्यूटर' के माध्यम से जहां बच्चों में गुणात्मक विकास होता है, वहीं दूसरी ओर खेल–खेल में ही कम्प्यूटर से सम्बंधित अनेक जानकारियों को छात्र सहजता एवं सरलता से प्राप्त कर लेता है।

(8) प्रश्नावली प्रणालीः– इस प्रणाली के माध्यम से बच्चों में गुणात्मक एवं बौद्धिक क्षमता का विकास होता है।

(9) क्विज प्रणालीः– इस प्रणाली के माध्यम से छात्रों में प्रश्नों के उत्तर देने की क्षमता का विकास होता है, साथ ही पत्र–पत्रिकाओं, आदि उसकी जानकारियों में वृद्धि होती है और उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है।

(10) पुनरावृत्ति प्रणाली:– पढ़ाए गए विषय को दुहराते रहने से वह विषय स्मृति में भी रहता हैं आगे वाले अध्याय को पढ़ाकर पिछले अध्यायों से प्रश्नावली प्रणाली के अनुसार पूछे जाते रहने से तत्सम्बंधी अभ्यास बना रहता है।

(11) अभ्यास प्रणाली:– कठिन शब्दों का सही उच्चारण, सही लेखन तभी सम्भव हो सकता है, जब निरंतर अभ्यास कराया जाता रहे। अभ्यास कराने के लिए विषयवस्तु का प्रस्तुतिकरण किया जाए। विषय की रोचकता बच्चों द्वारा सहज ही ग्राह्म हो जाया करती है।

(12) विश्लेषण विधि:– यह विधि तर्क प्रधान विधि है। दार्शनिक क्षेत्र में इसका प्रयोग प्राचीनकाल से हो रहा हैं। यह विधि रेखागणित के पढ़ाने में सबसे अधिक उपयोगी है।

इस विधि में जटिल समस्याओं को सरल समस्याओं में विभक्त किया जाता है। उनका निरीक्षण किया जाता है और हल ढूंढा जाता है।

(13) संश्लेषण विधि:– यह विधि, विश्लेषण विधि की बिल्कुल विपरीत है। संश्लेषण विधि में उन छोटे–छोटे तोड़े हुए भिन्न–भिन्न खण्डों को जोडा जाता है जो समस्या का हल होता है। इस प्रक्रिया में शिक्षण सूत्रों का भी प्रयोग होता है जैसे– 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' अग्रसर होते हैं। विश्लेषण तथा संश्लेषण विधि एक–दूसरे की पूरक है।

(14) व्याख्यान विधि:– जब शिक्षक विषय–वस्तु की सुव्यवस्थित व क्रमबद्ध प्रस्तुति छात्रों के समक्ष मौखिक रूप से करता है तो छात्र उसे सुनकर बिना किसी तर्क के स्वीकार करते रहते हैं, ऐसी शिक्षण विधि व्याख्यान विधि कहलाती है।

(15) प्रयोगशाला विधि:– प्रयोग तो अनेक शिक्षण विधियों में किए जाते हैं, परंतु प्रयोगात्मक विधि वह विधि है जिसमें शिक्षक छात्रों को सर्वप्रथम तथ्यों, नियमों अथवा सिद्धांतों का ज्ञान कराता है और फिर छात्रों को इन तथ्यों, नियमों अथवा सिद्धांतों को प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने की विधि बताता है और इसके बाद छात्र प्रयोग करते हैं, शिक्षक उसके इस कार्य में सहायता करता है और अन्त में छात्र प्रयोगों के निष्कर्ष से तथ्य, नियम अथवा सिद्धांत का सत्यापन करते हैं।

प्रयोगशाला विधि में छात्र स्वयं करके सीखता है।

(16) खेल विधिः– खेल पद्धति के प्रवर्तक हेनरी काल्डबेल कुक हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक *Play Way* में इसकी उपयुक्तता हेतु बताई है। जब बच्चा इस प्रणाली के द्वारा शिक्षण में रूचि लेने लगता है तो वह उसके लिए शिक्षण न रहकर एक खेल की तरह से सहज हो जाता है।

शिक्षण सहायक सामग्रीः–

शिक्षण में कुछ सामग्री का उपयोग इस प्रकार होता है कि वह पाठ शिक्षण एवं पाठ के विकास में शिक्षक को उसका कार्य पूरा करने में सहयोग देती है। साथ ही शिक्षार्थी को कल्पना करने, भाव प्रकट करने और विचार करने के लिए उत्प्रेरित करती है। अतः शिक्षण में शिक्षक को योग देने वाली सामग्री को 'सहायक सामग्री' कहा जाता है।

चित्र–विस्तारक, मैजिक लैंटर्न, फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर टेलीविजन 'सहायक सामग्रियां' हैं।

शिक्षण में सहायक सामग्री के उपयोग के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. पाठ को रोचकता प्रदान करना
2. विद्यार्थियों का ध्यान पाठ पर केन्द्रित करने हेतु
3. गूढ़ तथ्यों को समझाने हेतु
4. अर्जित ज्ञान के स्थायित्व हेतु

सहायक सामग्री के प्रकार–

शिक्षण की सहायक सामग्री के सम्बंध में जो कुछ भी कहा गया, उसके आधार पर हम मोटे रूप से इन साधनों को अग्र भागों में बांट सकते हैं–

1. वे साधन, जिनको दिखाने का प्रभाव अधिक पड़ता है यथा– वास्तविक रूप, प्रतिरूप, चित्र आदि। यह दृश्य साधन कहलाते हैं।

2. वे साधन, जिसको सुनाकर शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है यथा–लघु कथा, अन्तर्कथा, दृष्टान्त, आदि। यह श्रव्य साधन भी कहलाते हैं।

3. शिक्षण को सहायक साधनों का एक मिला–जुला रूप और भी हो सकता है, यथा– टेलीविजन, लघु–नाटिका, आदि जिनमें देखने और सुनने का कार्य साथ–साथ चलता रहता है। इन्हें हम श्रव्य दृश्य साधन कहते हैं।

दृश्य श्रव्य सामग्री को हम निम्नांकित भागों में बांट सकते हैं–

1. **दृश्य सामग्री**– इनमें वह सामग्री आती है, जिसे देखकर ही शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार की सामग्री को निम्नांकित चार्ट द्वारा दिखाया जा सकता है–

प्रक्षेपी	**अप्रक्षेपी**
फिल्म स्ट्रिप्स (Film Strips)	श्यामपट्ट (Black-board)
मूक चलचित्र (Multi Cinema)	मानचित्र (Map)
प्रोजेक्टर्स (Projectors)	एटलस (Atals)
मैजिक लैन्टर्न	चार्ट (Chart)
एपीस्कोप (Apiscope)	ग्लोब (Globe)
एपिडाइस्कोप (Apidiascope)	डायग्राम (Diagram)
स्टीरियोस्कोप (Sterioscope)	चित्र (Picture)
स्लाइड (Slide)	रेखाचित्र (Line Graph)
	नमूना (Specimen)
	मॉडल (Model)
	भित्ति–चित्र (Wall-picture)
	बुलेटिन–बोर्ड
	फ्लेनल बोर्ड (Flanel Boards)
	ग्राफ्स (Graphs)
	लपेट फलक (Rollup Board)

2. **श्रव्य सामग्री**– यह वह सामग्री होती है जिसे कानों से सुनकर ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(i) टेपरिकॉर्डर, (ii) रेडियो, (iii) ग्रामोफोन, (iv) रिकॉर्ड–प्लेयर

3. **दृश्य–श्रव्य सामग्री**– यह वह सामग्री है जिसके द्वारा सुनकर एवं देखकर ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

(i) टेलीविजन, (ii) वीडियो, (iii) कम्प्यूटर, (iv) चलचित्र

4. क्रियात्मक सामग्री– यह सामग्री भी यद्यपि दृश्य–श्रव्य सामग्री के अन्तर्गत ही आती है, परंतु यह केवल दृश्य–श्रव्य सामग्री ही नहीं है, बल्कि सीखने के लिए कुछ क्रिया भी करनी पड़ती है, अतः इसे अलग श्रेणी में रखा गया है, इसमें निम्नलिखित प्रकार की सामग्री सम्मिलित हैं–

(i) भौगोलिक यात्राएं, (ii) नाटक, (iii) संग्रहालय, (iv) प्ले रूम

प्रयोगात्मक सामग्री– इसमें वह सामग्री सम्मिलित होती है जिसका सम्बंध प्रयोग करने या सर्वेक्षण आदि कार्यों से होता है। इसमें निम्नांकित सामग्री सम्मिलित हैं–

(i) ट्रेसिंग टेबल, (ii) सर्वेक्षण सामग्री, जैसे जरीब, फीता, तीर, सर्वेक्षण दण्ड, झण्डियां, दिशासूचक, स्प्रिट, लेविल, समकोण दर्शक, सर्वेक्षण प्लेन–टेबल, साहुल एवं चिमटा आदि।

3. मूल्यांकन प्रणाली–

शिक्षण में भी पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के लिए किए गए प्रयत्नों की सार्थकता का पता लगाना ही शिक्षण का मूल्यांकन है।

मूल्यांकन की प्रक्रिया–

मूल्यांकन की प्रक्रिया में तीन बातें निहित हैं–

1. शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित करना
2. निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त परिस्थितियों को उत्पन्न करना तथा
3. मूल्यांकन के साधन (उपकरण एवं तकनीक)

इन्हीं को हम इस प्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

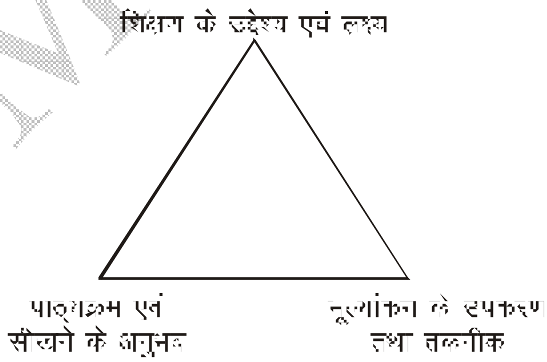

इन तीनों का स्पष्टीकरण इस प्रकार हैं–

(1) उद्देश्य निर्धारित करना–

शिक्षण के मुख्यतः तीन उद्देश्य हैं– छात्रों में अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति तथा सृजन शक्ति या रचनात्मकता का विकास करना।

शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है तथा मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि छात्रों में किस सीमा तक उक्त परिवर्तन हुआ है।

(2) ज्ञानबोधक परिस्थितियां–

शिक्षक के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप विद्यार्थी देखकर, सुनकर या पढ़कर कुछ नए अनुभव प्राप्त करते हैं। इन्हें ही हम सीखने के अनुभव कहते हैं। यदि सीखने के अनुभव शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप होंगे, तब तो उद्देश्यों की पूर्ति संभव है अन्यथा नहीं। इस प्रकार निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो भी परिस्थितियां निर्मित की जाएं, वे–

1. शिक्षण उद्देश्यों से सम्बंधित हों। 2 सार्थक और विद्यार्थियों की रूचि के अनुरूप हों,। 3. विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर, योग्यता तथा क्षमता के अनुरूप हों।

(3) मूल्यांकन के उपकरण तथा तकनीकें–

मूल्यांकन का उद्देश्य प्रमुखतः दो प्रकार की जानकारी प्राप्त करना है–

1. शिक्षा के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई? तथा

2. विद्यार्थियों में किस सीमा तक परिवर्तन हुआ?

मूल्यांकन की युक्तियां–

मुख्य रूप से दो प्रकार की हो सकती है–

1. निरीक्षण प्रधान,

2 परीक्षण प्रधान।

निरीक्षण प्रधान युक्तियां, वे युक्तियां हैं जिनमें किसी शिक्षार्थी के व्यक्तित्व से सम्बंधित पहलुओं का मूल्यांकन देखकर किया जाता है। देखे जाने वाले व्यवहार हैं– रूप–रंग, मौखिक अभिव्यक्ति, बोलने या सोचने का ढंग, त्वरित निर्णय लेने की क्षमता और इन व्यवहारों के विषय में जानने या इनका

मूल्यांकन करने की युक्तियां हैं– अनिरीक्षित निरीक्षण, साक्षात्कार, वर्णक्रम मापनी, इतिहास–वृत्त, आदि।

मूल्यांकन की परीक्षण प्रधान युक्तियां वे युक्तियां हैं जिनमें मुख्य भूमिका मूल्यांकनकर्ता की न होकर उसकी होती है जिसका मूल्यांकन किया जा रहा हैं। उसे सम्बंधित परीक्षण तथा परीक्षण से सम्बंधित निर्देश दे दिए जाते हैं और उन्हीं के निर्देशों के अनुसार शिक्षार्थी परीक्षणों के सम्बंध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। प्रतिक्रिया के जो परिणाम होते हैं– उन्हीं के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है– प्रश्नावली, तालिकाएं, चयन–सूचियां तथा विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण इसी प्रकार की युक्तियां हैं।

मूल्यांकन का महत्त्व–

शिक्षा एवं शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व इस प्रकार हैं–

(1) शिक्षा की योजना की सार्थकता अथवा शिक्षक की शिक्षण–प्रभाविता का पता लगाने के लिए भी मूल्यांकन आवश्यक हैं

(2) मूल्यांकन के अभाव में किसी भी प्रकार का निर्देशन संभव नहीं।

(3) मूल्यांकन के अभाव में शिक्षा और शिक्षण की समस्याओं का समाधान संभव नहीं।

(4) इसी के द्वारा छात्रों की व्यक्तिगत समस्याओं का पता लगाया जा सकता है।

(5) किसी युक्ति, तकनीक या शिक्षण विधि की प्रभाविता का पता भी मूल्यांकन द्वारा ही संभव है।

(6) छात्रों की वैयक्तिक या सामूहिक कमजोरियों का पता लगाना मूल्यांकन के बिना संभव नहीं।

(7) मूल्यांकन द्वारा ही यह पता लगाया जा सकता है कि शिक्षा या शिक्षण के किस उद्देश्य की पूर्ति किस सीमा तक हुई?